लोकतंत्र : परहेज और पाबंदियाँ

(मराठवाडा विद्यापीठ, औरंगाबाद के तत्वावधान में
आयोजित स्वामी रामानंद तीर्थ व्याख्यानमाला
के अन्तर्गत दिनांक १५ तथा १६ मई
१९८० के दिन दिया गया व्याख्यान.)

व्याख्याता

न्या. श्री. चंद्रशेखर धर्माधिकारी

न्यायाधीश, बम्बई उच्च न्यायालय.

लोकतंत्र पाबंदियाँ और परहेज

– न्यायमूर्ती चंद्रशेखर धर्माधिकारी

मराठवाडा संतों की भूमि है, औरंगाबाद जिला एक ऐतिहासिक जिला कहलाता है। समूचे भारत का इतिहास इस जिले में बिखरा हुआ है, पैठण में शालिवाहन का इतिहास तो अजंता में चालुक्यों का, तो वेरूल (एलोरा) में राष्ट्रकुट के इतिहास के स्मृतिचिन्ह दिखाई देते हैं। जनार्दन स्वामीका देवगिरी का किला एलोरा के पडोस में है। आपेगांव में ज्ञानेश्वर महाराज, पैठन में एकनाथ महाराज तो जाम में रामदास स्वामी के स्मृतिचिन्ह दिखाई दे रहे हैं। यह पुण्य-भूमि है, यही जानकर औरंगजेब बादशाहाने अपने अंतिमदिन यहीं गुजारे। खुल्दाबाद में औरंगजेब की कब्र है। इतने बडे सम्राट, या बादशाह की इतनी सादी कब्र दुनिया में और कहीं नहीं है। औरंगजेब में अनेक दोष रहे होंगे. लेकीन रहन सहन में सादगी, यह उसका गुण था और यही शायद इस भूमि का गुण है। मराठवाडा महाराष्ट्रका मूल स्थान है, संतो के साहित्य का यह स्त्रोत है तो शिवछत्रपती की प्रेरणा भवानी भी यहीं की है। अधुनिक इतिहास का एक और स्मारक डॉ. बाबासाहेब आम्बेडकर की याद दिलाते हुए इसी औरंगाबाद में खडा है। धर्म और संस्कृती का यहां समन्वय है, मानो समूचे भारत की पाकेट एडिशन मराठवाडा है। इन्ही संतो की श्रेणी में स्वामी रामानंद तीर्थ का नाम भी जोडना होगा।

स्वामीजी सही मायने में आजादी के आंदोलन के सेनानी थे। जबतक जान को खतरा था तबतक वे सारे आंदोलनों में सबसे आगे रहे। मुक्ती संग्राम समाप्त हुआ, आजादी मिली उसके बाद जो सत्ताका बटवारा शुरु हुआ तब स्वामीजीने किसी के सामने भीख का कटोरा नहीं फैलाया। उसके बाद का उनका जीवन एक सामान्य नागरिक के प्रतिनिधी का जीवन है। ऐसा कहा जाता है की कोई आदमी दूसरे आदमीको पूर्ण रूप से समझ सके, यह असंभव है और यही मनुष्य की विशेषता है। स्वामीजी मुक्ती संग्राम के सेनानी थे, वे मुक्ती सबसे निचे, सबसे पिछेवाले के लिए भी चाहते थे। स्वामीजीका जीवन संन्यस्त जीवन था, वे खुद संन्यासी थे। वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे थे की भौतिक वादसे मानवीय प्रेरणा जन्म नही ले सकती, मनुष्य के भलाई की प्रेरणा केवल मानवीय

ही नहीं बल्कि पारमार्थिक और आध्यात्मिक प्रेरणा भी है । हमारे देशमें व्यक्तीके जन्म का जैसे मुहुर्त होता है, वैसे ही मृत्यु का भी होता है । अगर मौत का मुहुर्त टल गया तो सारी जिंदगी बेकार मानी जाती है, मौत भी फोकट की होती है । स्वामीजी की खुश किस्मती से उनका देहावसन उनकी कर्मभूमि हैद्राबाद में हुआ : इसीलिए शानदार अंतिम यात्रा निकाली, स्मारक भी बना, हम सब अपने दिलपर हाथ रखकर सोंचे कि कहीं दुर्भाग्यवश स्वामीजीकी मृत्यु हैद्राबाद के बदले महाराष्ट्र में होती तो क्या यह नजारा देखनें को मिलता ?

सत्ता–संपत्ती–निरपेक्ष सामान्य नागरिक हमारे संविधान तथा प्रजातंत्र का सिर्फ विषय ही नही विधाता है । भारत में प्रजातंत्र है, यहां संसद सर्वोच्च नहीं लोग सर्वोच्च हैं लोकात्मा की आवाज प्रजातंत्र का अधिष्ठान है । लोक शिक्षण और लोक जागरण के माध्यम से स्वामीजीने लोकात्मा की उपासना की । लोकात्मा की उपासना और आवाहन में ही समस्त जीवन समर्पित किया । इसी लिए वे लोकात्मा के प्रतिनिधी बने । सामान्य नागरोक के आंतरिक सत्व का उन्होनें प्रतिनिधीत्व किया । सत्ता संपत्ती के लेबल उनके व्यक्तित्व पर कभी नही चिपके लेकीन आज तो मनुष्य इन लेबलों की आड में आपनी मनुष्यता ही भूल रहा हैं । उसे अपने ललाटपर चिपके हुए जाती, धर्म, भाषा आदि के भिन्न २ लेबल याद है । मानो लेबलों की भीड में मनुष्य खो गया है । इसीलिए मैं स्वामीजी को सामान्य नागरिक का असामान्य प्रतिनिधी मानता हुँ ।

स्वामीजी के नाम से चलने वाली इस व्याख्यानमाला के लिए, इसीलिए मैने इस देश के सामान्य नागरिक के जीवन से संबंधित विषय चुना है । समाजवाद का, आर्थिक समानता का तत्व तथा लोकसत्ता के राजनितिक आजादी के सिद्धांत के मेलसे लोकनिति शब्द का उदय हुआ । आजकल लोकतंत्र के बारे में पढे लिखे लोगोंके मन मे संदेह की भावना है, उनके लिए इस देश का भविष्य अंधकारमय है, वे अब तक तथाकथित उज्वल इतिहासमें ही जी रहे हैं । मित्रो, मैने भी इतिहास पढा है । ऐसा सुना है कि इस देश मे दही दुध की नदियां बहती थी । सोने का धुआँ निकलता था । कोई भिकारी नही था । लेकिन यह उज्वल इतिहास मुझे कोई प्रेरणा नही दे सका । सुना हैं कि महाभारत काल में इतना दही दुध था कि पूछो मत, उसकी तो नदीयाँही बहती थी इतना होने के बावजूद अश्वस्थामा को पानी में आटा मिलाकर हो दूध समझकर पीना पडा, उस बेचारे के नसीब में गिलासभर दूध भी नहीं था । भगवान कृष्ण की दही दूध की लिलाएँ प्रसिद्ध हैं । परंतु उनके परम मित्र सुदामा की तकदीर मे सिर्फ "पोहा" ही था । रामराज्य की तो हमारी अभिलाशा है,

रामायण काल सर्व संपन्न काल माना गया है। लेकिन उस रामायण काल में भी आदिवासी शबरी की तकदीर में बेरही थे। रामचंद्र के चरणो में सिवा झूटे बेर के वह कुछ भी नही चढा सकी। आपको भले ही बुरा लगे, हमारा इतिहास संपन्नता का भले ही रहा हो, समानता का कभी नही रहा। वही दूध की नदिया उस जमाने में और आज भी कुछ लोगोके लिए ही बहती थी और बह रही है और जिनके लिए वह बहती थी, उन्होने अन्य किसीको दही दूधका स्वाद तो छोड ही दीजिए उन नदियों के किनारे भी खडे नही रहने दिया। हमारी यह गलतफहमी है कि संपन्नता से सामान्य नागरीक का नसीब खूल उठेगा, लेकीन हमें यह खुब समझ लेना चाहिए कि समान वितरण की योजना नहीं होगी तो संपन्नता कोई मायने नही रखती, लोकतंत्रका पहला मुल्य यह है कि उसमें मामूली से आदमी की इज्जत और रुतबा भी समान है। स्त्री-पुरुष, ब्राम्हण भंगी सारे समान, यह द्वत अद्वेत से भी बढकर अैसा अध्यात्मिक मूल्य है।

हमारे संविधान के मुताबिक महामहोपाध्याय श्री काणेजी तथा औरंगाबाद का रहनेवाला अंगुठाछाप व्यक्तीका मुल्य समान है, दोनों को एक ही वोट का अधिकार है। टाटा-बिरला का एक वोट, तो भिकारीका भी एक वोट, यह परिस्थिती संविधान के पहले कभी नही थी। राष्ट्रपति तथा राष्ट्रपति भवन की सफाई करनें वाले भंगी का नागरिकता की दृष्टी से मूल्य समान हो, यही लोकतंत्र की खूबी है। औसत आदमी की गुणवत्ता के लिए इस प्रणालीमें अवसर मिलता है, हर इंन्सान के उत्कर्ष के लिए अवसर है। इसिलिए हम लोकतंत्र को उत्कृष्ट तंत्र कहते है। लोकतंत्र की दूसरी खुबी यह है कि इसमें सत्ता का अधिकार पारंपारिक या अनुवंशिक नहीं हो सकता, यह जरुरी नहीं कि राजा का बेटा राजा ही होगा। हम रामराज्य जरुर चाहते है। लेकिन वह राज्य रामचंद्र वल्द दशरथ साकिन अयोध्याका राज्य नही। समझ लिजिए की कल प्रभु रामचंद्र पृथ्वी उतर आए और कहने लगे कि मै वही राम हुं, जिसका राज तुम चाहते हो, मुझे राज्य करनें दो। हम उन्हे नमस्कार जरुर करेंगे लेकिन नम्रतापूर्वक कहेंगे कि आप सत्ता के अधिकारी नहीं बन सकेंगे आपको मत-पेटो द्वारा चुनकर आकर ही हमारा प्रतिनिधि बनना होगा। लोकतंत्र में लोग अपना प्रतिनिधि खुद चुनते हैं। इसीलिए व्यक्ती का मुल्य और व्यक्ती की स्वतंत्रता लोकतांत्रिक व्यवस्था के परम मुल्य हैं।

स्वतंत्रता का दूसरा गुण यह है कि संबंध के बिना स्वतंत्रता संभव नहीं है। हमारे कानून की भाषामें 'सालिटरी कनफाइनमेन्ट' एकान्तवास की सजा सबसे बडी सजा है। पारस्पारिक संबंध, एक दूसरे के साथ जीनें की

इच्छा लोकतंत्र की बुनियाद है । इसलिए इसका पहला पथ्य यह है कि हम एक दूसरे की स्वतंत्रता का आदर करें, हर इंन्सान को अपनी आजादी के उपभोग का हक्क है । आजादी का सौदा आराम से नहीं हो सकता । सुख से स्वातंत्र्य बडा है । यह स्वातंत्र्य पारस्परिक है और इसिलिए एक दूसरे के स्वातंत्र्य का आदर सबके उपभोग के लिए आवश्य है । अंग्रेजी में एक अच्छा वाक्य है "Your Liberty to Swing your hand ends where tip of my nose begins" आपकी हाथ हिलाने की स्वतंत्रता वहाँ खत्म होती है जहाँ से मेरी नाक की शुरुवात होती है । हाथ हिलाने की स्वतंत्रता का मतलब बुक्का या ठोसा लगानेकी स्वतंत्रता नहीं, इसिलिए हमारे संविधानने कुछ पाबंदियों की योजना की है । यु तो स्वातंत्र्य की कोई हद नहीं । सीमित या परिमित स्वातंत्र्य अपने आप में पूर्ण स्वतंत्र्य नहीं है, लेकिन संबंध के बिना स्वातंत्र्य संभव हीं नही, इसीलिए एक का स्वातंत्र्य दूसरे के वैसे ही स्वातंत्र्यसे मर्यादित हो जाता है । अन्यथा मेरे स्वातंत्र्य का अपहरण आप कर सकते हैं और मैं आप की स्वातंत्रता का । इस प्रकार दोनों की स्वतंत्रता मिथ्या या नकली हो जाती है । इसलिए पहला पथ्य यह है कि मैं आपकी स्वतंत्रता का आदर करुं और आप मेरी स्वतंत्रता का आदर करें ।

बाईबल में एक किस्सा है । "केन ईर्ष्या के कारण अपने भाई की हत्या कर डालता है । केन से जब जबाब–तलब किया जाता है, तब वह उत्तर देता है, " क्या मैं अपने भाई का रखवाला हूं ? लोकतंत्र में प्रत्येक व्यक्ती एक दूसरे का रखवाला होता है, सभी एक दुसरे के रखवाले, अभिभावक हैं । यही पारस्पारिकता का संबंध लोकतंत्रका अधिष्ठान है ।

लोगों की एक और गलतफहमी है और खासकर पढेलिखे लोगो की, कि हमने संविधानका कुछ हिस्सा अमेरिकी संविधानसे, कुछ आस्ट्रिया के संविधानसे, कुछ आयरलंडसे और ब्रिटेन के संविधानसे उधार लेकर बनाया । मित्रो, यह आप खूब ध्यान में रखें कि संविधान और क्रांती कभी किसी से उधार नहीं ली जा सकती । शब्द की समानता का मतलब अर्थ या आशय को समानता नहीं है यूं तो शेक्सपियर की किताबों के सारे शब्द, खोजनेसे डिक्शनरी में मिल सकते हैं, इसलिए यह तो नही कहा जा सकता कि शेक्सपियरने अपना सारा साहित्य डिक्शनरीसे चुराया है । शब्दसे उसके पिछे का आशय अधिक महत्वपूर्ण होता है । भारत में कई वर्ष से एक आजादी का आंदोलन चला । १८९५ में कॉन्स्टीटचूशन ऑफ इंडिया बिल बना । १९५२ में एनीबेसेंट के नेतृत्व में कामनवेल्थ ऑफ इंडिया बिल आया । १९२७ में डिक्लेरेशन ऑफ राइटस का घोषणा–पत्र

बना। १९३२ के कराची काँग्रेस के प्रस्ताव आज हम संविधान में पाते हैं, उसके काफी अंश शामिल थे। आजादीके आंदोलनों में आम आदमी के मन में कुछ आकांक्षाएं जीवित हुई, हमारे सामाजिक जीवन की कुछ त्रुटियां, हम समझ सके। इसलिए बुरी चीजों का त्याग कर नयी आकांक्षाओं को हक के रुप में जन्म देने के लिए हमारे संविधान में योजना बनाई गयी। महात्मा गांधी कहते थे, उस मुताबिक हकों का जन्म कर्तव्य की कोखसे होता है। अधिकार और कर्तव्य परस्परावलंबी हैं। गांधीके जमानें में भी यह विचार रखा गया कि इस देश का आम आदमी पढालिखा नहीं इसलिए मत का अधिकार सबको नहीं देना चाहिए, किसीने विचार रखा कि लिमिटेड डिमाक्रसी (सीमित लोकतंत्र) होनी चाहिए किसी के अनुसार क्वालिटेटिव डिमाक्रेसी होनी चाहिए, कुछ कहने लगे संपत्तीवान व्यक्ती आयकर देकर शासन में योगदान देते हैं, इसलिए उन्हे ही मत का अधिकार होना चाहिए। गांधीजीने अपनी सीधी साधी जवान में उत्तर दिया, इसका मतलब यह होगा कि जो अमीर है, लेकिन चरित्रहीन है, उन्हें मताधिकार मिलेगा और जो गरीब आदमी चरित्रवान है लेकिन पढेलिखें और पैसेवाले नही है, उन्हें यह हक्क नहीं मिलेगा। गांधीजीनें विचार रखा कि जो शरीरश्रम करके देश के उत्पादन में योगदान देता है, उसेही मतदान का हक होना चाहिए वह श्रमिकही उसका वास्तविक हकदार है। कई वर्षोतक विचार–मंथन चला और आखिरकर स्त्री–पुरुष–धर्म–भाषा के सारे भेद भुलकार प्रत्येक बालिग को मत का अधिकार दिया गया। जहा प्रौढ मतदान लोकतंत्रकी बुनियाद होता है वह राष्ट्र सेक्यूलर याने धर्म निरपेक्ष ही हो सकता है। अमेरिकी संविधान की तरह फेडरल (संघीय) शासन पद्धती हमने भी स्वीकार की पर हमारे और अमेरिकी संविधान में एक मूलभूत अंतर है। अमेरिकाने दो तरह की नागरिताएं स्वीकृत की हैं। एक अमेरिकी और दूसरी विशिष्ट स्टेट या राज्य की। व्यक्ती एक साथ वह जिस स्टेट में रहता है उस स्टेट का तथा अमेरिका का नागरिक हो सकता है। भारतीय संविधान के मुताबिक नागरिकता एकही है और वह है भारतीय नागरिकता। आप चाहे रहनेवाले किसीभी गांव–प्रात के हों, सदस्य किसी धर्म–भाषा के हों, नागरिक सिर्फ हिंदुस्तान के हैं। यह आखिल भारतीय नागरिकता हमारे संविधान की वैशिष्यपूर्ण विशेषता है। लोक सम्मती उसका आधार है। यह अखिल भारतीय नागरिकताकी भावना एक दूसरे के साथ रहने की प्रेरणा है। "The Existance of a nation is a daily plebicite of its People just as existance of an individual is a continued affirmation of the will to Live.

यह व्हिक्टर ह्यूगो की रिपब्लिक की व्याख्या हमारे लोकतंत्र की आधारभूत भावना है।

यह अखिल भारतीय नागरिकता हमारे लोकतंत्र का अधिष्ठान होनें के बावजुद हम अभी तक यह लक्ष हासिल नहीं कर पाये। मुझे डर है कि कहीं यह बुनियादी नागरिकता कागज पर ही न रह जाय। मेरे पिताजी, पूज्य दादा धर्माधिकारी ने हमारे समाज में मौजूद नागरिकता की भावनाओं का बड़ा अच्छा विश्लेशन किया है। यह नागरिकता चार प्रकारकी है।

१) सांप्रदायिक नागरिकता Denominational citizenship (डि-नॉमिनेशनल सिटीझनशिप)

अगर हम किसी से सवाल पूछे कि आप कौन हैं, तो वह जबाब देगा, मैं ब्राम्हण हूँ, हिंदु हूँ, भंगी हूँ, मुसलमान हूँ, मैं भारतीय हूँ ऐसा कोई उत्तर नहीं देता। इस्लामियत ही कौमियत है, इस भावना से पाकीस्तान का जन्म हुवा। मातृभूमि से धर्म-भूमि अलग हो गयी। महात्मा गांधी ने पाकीस्तान के जन्म पर कहा था, पाकीस्तान भले ही हो लेकिन मैं "टू नेशन" थियरी, द्विराष्ट्रवाद नहीं मान सकता। मैं यह मानने को तैयार नहीं हूँ कि भिन्न धर्म वाले लोग एक दुसरे के साथ नहीं रह सकते। जब नागरिकता का आधार जाति या धर्म हो जाता है, तब राष्ट्रीयता के टुकडे हो जाते हैं। जाति का लक्षण ही यह है कि वह इन्सान जब वह मां के पेट में होता है, तबसे उसके तनपर चिपकती है और मौत के बाद भी नहीं जाती। जो कभी नहीं जाती वह जाति है। पवित्र भावना यह जाति का आधार है, इंसान इन्सान से जितना दूर रहेगा उतना वह पवित्र माना जाता है इस तरह जाति की बूनियादे अमानविय हैं। जाति का दुसरा लक्षण यह है कि जिसे जाति पुसाती है, या फायदेमंद होती है, वह हमेशा जाति पालता है और जिसे वह व्यवहार में नहीं पुसाती वही जाति का इन्कार करता है। जाति तब तक समाप्त नहीं होगी, तबतक जिसे जाति पुसाती है, वह जाति का इंकार नहीं करेगा। जन्माश्रित व धर्माश्रित नागरिकता धर्मनिरपेक्ष राज्य की नींव ही उखाड देने वाली वृत्ति है। हमारी अखिल भारतीय नागरिकता का गला रोजमर्रा संप्रदायवादी घोंट रहे हैं। इनसे बचना होगा। मैं एक संगोष्ठी में शामिल होने गया था। वहाँ एक वक्ता ने भाषण करते हुए कहा कि हिंदुस्तान में रहनेवाले मुसलमान की निष्ठा अगर धर्म के नाम पर पाकिस्तान से होगी तो उसे हिंदुस्तान मे रहनें का कोई हक नहीं।" यह वाक्य सुन श्रोताओंने तालिया बजायीं। जब मेरी बारी आयी तब मैंने श्रोताओंसे अपील की कि इस कथन पर मैं हस्ताक्षर करने के लिए तैयार हुँ, लेकिन मै यह तर्क थोडा आगे बढाना चाहता हूँ। जिस इंन्सान की निष्ठा इहलोक मे रहते हुए भी परलोक से होगी उसें जल्द से जल्द परलोक जाना चाहिए। पारमार्थिकता में अगर इस भूमी पर का जीवन रैनबसेरा मानकर संबंधहीन बन गया तो नाग-

रिकता का आधार ही छूट जाता है। नागरिक के ऐहिक जीवन में तथा नागरिकता के पारस्पारिक संबंध मे धर्म या संप्रदाय का कोई स्थान नहीं होगा, यह धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र तथा अखिल भारतीय नागरिकता की बुनियाद हैं।

२) **हाइफनेटेड नागरिकता :-**

दो शब्द जोडने के लिए जो लकीर या रेषा लगाई जाती है उसे 'हायफन' कहते हैं। हम इसे सामासिक नागरिकता कहेंगे। तुम कौन हो? मैं महा–राष्ट्रियन भारतीय हूँ, मैं असमिया भारतीय, बंगाली भारतीय हूँ। गणित के सिद्धांत के मुताबिक कॉमन फॅक्टर कॅन्सल हो जाता है। इसलिए ' भारतीय ' कॅन्सल हो जाता है और महाराष्ट्रियन, बंगाली, तामिल मात्र बच जाते है। महात्मा गांधी को द्विराष्ट्रवाद मान्य नहीं था। उनके शिष्यो ने बहुराष्ट्रवाद पैदा कर महात्माजी का तर्पण किया। इसी मे से प्रादेशिक अस्मिताएँ जगीं जिशका कोई अन्त नहीं। विज्ञान ने हमें एक मुकाम पर लाकर छोडा। एक स्कुल के विज्ञान प्रदर्शनी का उद्घाटन करने मै गया। ग्यारवी की एक छात्राने मेरे अंगूठेसे खून निकाल कर उसका ब्लडग्रूप बताया। मैंने उससे पूछा की बेटी इन्सान के कुल ब्लड ग्रुप कितने है, उसने यह भी बताया। मैंने फिरसे उससे पूछा, इसका मतलब यह हुआ कि ब्राम्हण और भंगी का ब्लड ग्रुप एक ही होगा। वह बेचारी हैरान ही गयी। नागपूर के मेंडिकल कालेज में मेरा भतीजा बेहद बीमार था बेहोश हो गया। उसे खून देने की नौबत आयी। उसके उसके माँ–बाप और कुटूंबियो का खून उसके रक्त गुट से नहीं मिला, आखिर दवाखाने का अटेंडेंट जो भंगी था उसका खून दिया गया। भंगी के खून से ब्राम्हण का लडका होश मे आया। यह विज्ञान की माया है। इतना होने के बावजूद सार्वजनिक सभा में भाषण करते समय नेता गण कहते हैं, हमे मामूली इंन्सान मत समझिए। हमारी रगों और नसों में छत्रपति शिवाजी महाराज, राणा प्रताप, सुभाष बाबू सरिखों का खुन बहता है। मतलब, महाराष्ट्र के रहनेवाले लोगों की रगो में शिवाजी का खून, राजस्थानियों रगो मे के राणा प्रताप का खून। मतलब यह हुआ कि विज्ञान की दृष्टीसे समस्त मानव जाति का खून सम–समान होने के बावजूद चमडी और भाषा की बुनीयाद पर फिरकापरस्ती कायम रही। पश्चिम में काले–गोरे का भेद रहा। लूथर किंग के आंदोलन का एक प्रसिद्ध वाक्य है, "If you want to solve the question of black man, give whiteman a white heart" बंगाली, मराठी, यह भेद खत्म होने के लिए जैसे गोरे आदमी का दिल काले आदमो का सवाल खत्म करने के लिए स्वच्छ या गोरा होना चाहिए, उसी आत्मीयता की भावना की आवश्यकता होगी।

आज ऑरवेल की "एनिमल फार्म" में कहे मुताविक महाराष्ट्र मे मराठी भाषी नागरिक मोअर ईक्वल (अधिक समान) तो बंगाल में बंगला बोलनेवाला, तमिलनाडू में तमिल भाषी, इस अधिक समानता की होड और दौड में समता और अखिल भारतीय नागरिकता का लोप हो रहा है। इसलिए हमे प्रादेशिक अस्मिताओ से बचना होगा।

(३) गौण नागरिकता (Secondclass Citizenship) (सेकंडक्लास सिटीफनशिप)

जहां जो अल्पसंख्यांक होगा वह दोयम या सेकंडरी हो जाता है. चाहे भाषीक अल्पसंख्यांक हो या सांप्रदायिक या जातीय हो, इन्हे बहुसंख्यक लोगों की कृपा पर ही जीना पडता है. फिर नेता भी बंट जाता है और संत भी बंट जाता है गांधी गुजराती हो जाता है, सुभाष बंगाली हो जाता है. अखिल भारतीय कोई नही होता.

(४) आंशिक नागरिकता (Fractianal Citizenship) (फ्रॅक्शंनल सिटिझनशिप्)

आंशिक का मतलब जो पूर्ण नहीं. आंशिक नागरिक का मतलब जो व्यवहार में सूमूचा नागरिक नहीं मानाजाता. जैसे स्त्री है, अछूत है, ये हमारे देश में पूरे इंसान भी नहीं माने जाते. इसका अधिक विस्तार करने की जरुरत हैं, ऐसा मैं नहीं मानता. इनकी सामाजिक प्रतिष्ठा संपूर्ण नागरिक की प्रतिष्ठा नहीं है. हमारे संविधान के मुताविक स्त्री प्रधानमंत्री बन सकती है. वह कमाण्डर इन चीफ भी बन सकती है उसे सारे वधानिक अधिकार मिल सकते है. इतना होनें के बावजूद लडकी का जन्म होते ही मां–बाप को बुरा लगता है, यह स्त्री की प्रतिष्ठा है. दोष वर्तमान सामाजिक ढांचे का है, अछूत और स्त्री की नागरिकता आभास रुप में ही रही, वास्तविक नही बन पायी. वे विचारे समूचे मानव भी नहीं बन पाये तो नागरिक कैसे बन पायेंगे.

इस चर्चा से आपके ध्यान में यह आया होगा कि धर्म, भाषा, जाती, लिंग–भेद, हमारे लोकतंत्र की प्रगती में रुकावट बन रहे है. जन्माश्रित प्रतिष्ठा नागरिकता का आधार नहीं हो सकती. देशभक्ति और राष्ट्र प्रेम में फर्क है. जमीन से प्रेम जमींदार भी रखता है. देश प्रेम जरुरी है लेकिन अपने आप में पर्याप्त नही. इस जमीत पर रहने वाले लोगों में एक दूसरे के साथ रहने की इच्छा और आकांक्षा होना राष्ट्रीयता की बुनियाद है. भारत में रहने वाले समस्त नागरिक एक दूसरे के साथ रहने की इच्छा रखे और वैसा विधायक प्रयास करें तो ही लोकतंत्र आम लोगों तक पहुंच सकता है. वर्ना मुझे डर है कि वह सिर्फ कागज पर ही रह जायेगा.

पाश्चिमात्य दार्शनिक खालिल जिब्रान का राष्ट्र इस विषय पर एक प्रसिद्ध निबन्ध है. उस निबंध में जिब्रान ने कहा है कि जिस देश के लोग अपने राष्ट्र में पैदा हुआ अन्न नहीं खाते. उन लोगों की भूख कभी नहीं मिटती। जिस जिस राष्ट्र के लोग अपने देश में बुना हुआ वस्त्र नहीं पहनते उन लोगों की नग्नता कभी नहीं छिपती। और जिस राष्ट्र के अनेक टुकडे होंगे, और हर टुकडा आपने आप को स्वतंत्र राष्ट्र मानता हो, उस राष्ट्र जैसा अनुम्पनीय राष्ट्र दूसरा नहीं। शायद उस दार्शनिक ने जो लिखा, वह सही है; यह साबित करने की जिम्मेदारी हम भारतवासियों ने उठायी है। कई बार ऐसा भी लगता है कि हमारे देश में आखिल भारतीय नागरिकता यह वास्तविकता है ही नहीं, वह केवल आभास है, इसलिए इस आभास को वास्तविकता में बदलने के लिए विधायक कदम उठाने होंगे तभी हमारा लोकतंत्र अनुप्राणित हो सकता है।

सामान्य नागरिक का विकास स्वतंत्रता के संदर्भ में हो सके यह लोकतंत्र की बुनियाद है। इसलिए लोकतंत्र में प्रगति शासन की ओर से शिक्षण की ओर होगी। स्वायत्त शासन ही अनुशासन है। बाह्य नियंत्रण कम और स्वयंशासन या, संयम अधिक हो। यही लोकतंत्र का गुण है। अनुशासन के लिए अंग्रेजी में "डिसीप्लीन" शब्द है। जिस धातु से डिसीप्लीन शब्द सिद्ध हुआ, उसी धातुसे (disciple) "डिसायपल" शब्द सिद्ध हुआ। इस का संस्कृत अनुवाद "शिष्य" शब्द से किया जाता है। शिष्य और शिक्षण ये दोनों शब्द एक ही धातु से सिद्ध हुए हैं। इस तरह अनुशासन का ही अर्थ शिक्षण है। जिसमें शासन कम से कम होता है, और आत्मशिक्षण अधिक से अधिक होता है। वह अच्छा लोकतंत्र माना जाता है। इसीलिए लोकतंत्र में पथ्य या परहेज का महत्व अधिक है।

स्वातंत्र्य की कोई हद नहीं है। सीमित स्वातंत्र्य या परिमित स्वातंत्र्य में स्वतंत्रता का अधिकार है ही नहीं। स्वातंत्र्य एक सामाजिक मूल्य है। आप तो संतों की भूमि में रहते हैं। संत ऋषि-मुनि जंगल में रहते थे। अरण्य वृत्ति याने निर्भय वृत्ति। जंगली जानवर की शिकार की जा सकती है। लेकिन उसे गुलाम नहीं बनाया जा सकता। गुलाम वही जानवर बन सकता है, सवारी उसी जानवर पर की जा सकती है, जो इंसान के गुण सीखता है। सर्कस में रिंग मास्टर के डर से शेर और बकरी एक ही थाल में दूध पीते हैं। इसका मतलब यह नहीं कि शेर की क्रूरता खतम हुई या बकरी की भीरूता समाप्त हुयी। वह सहअस्तित्व रिंग मास्टर के चाबुक का गुण है। जानवरों का नहीं। लेकिन लोकतंत्र का आधार दंड-शक्ति नहीं है, किंतु सम्मति है। नागरिक की सर्व सम्मति या सर्वानुमति। सारांश यह कि लोकतंत्र दंडप्रधान नहीं होता, परस्परानुमति के आधार पर वह अधिष्ठित

होता है। लोकतंत्र का आधार तक्त, तिजोरी या तलवार नहीं, लोकमत है। लोकतंत्र में सदाचार का यही पहला, दूसरा, तीसरा और अंतिम नियम है। इस परहेज के बिना लोकतंत्र खोखला है। क्योंकि उसमें हर नागरिक की स्वतंत्रता का संरक्षण और विकास नहीं हो सकता। बहुमत यह व्यवहार है, परंतु बहुमत या बहुसंख्य का राज लोकतंत्र नहीं है। लोकतंत्र में मत का महत्व है। संख्या का नहीं। बहुमत, बहुसंख्य नहीं है, लेकिन कई बार बहुसंख्या ही बहुमत में परिणत हो जाती है। अल्पसंख्य अल्पमत में रह जाते हैं। इसीलिए जिस व्यवस्था में अल्पमत सुरक्षित तथा स्वरक्षित होता है, उसे ही लोकतंत्र कहते हैं। जॉन स्टुअर्ड मिल के कथन के अनुसार सारी मानव जाति एक तरफ और एक इन्सान एक तरफ होनेपर भी उस अकेले व्यक्ति की अपना मत प्रदर्शित करने का हक है। यह लोकतंत्र की विशेषता है। व्यक्ति के मत या अस्मिता–समाप्तिकरण बहुमत या बहुसंख्या से नहीं हो सकेगा। यही लोकतंत्र की खासियत है। चुनाव एक साधन है, मतप्रदर्शन का। लोकतंत्र में नागरिक का मत यह सती का सतीत्व है। उसका महत्व उसे समझा देना यह लोकतांत्रिक शिक्षण का एक हिस्सा होना चाहिए। लेकिन आज के संदर्भ में समाज के कुछ तबके के लोग जो साधन संपन्न और सामर्थ्यवान होते हैं, वे अपनी शक्ति का दुरुपयोग साधनहीन और दुर्बल वर्ग पर और उसकी स्वतंत्रता पर अतिक्रमण करने में करते हैं। वह मत हडपना चाहते हैं। खरीदना चाहते हैं। उसका नीलाम करना चाहते हैं। यथार्थ में लोकतंत्र बहुमत का तंत्र है, बहुसंख्य का नहीं, फिर भी बहुसंख्य बहुमत में रहना चाहते हैं। इसीलिए वे अपने संख्याबल का प्रयोग अल्पसंख्यापर करते हैं। अल्पसंख्यों की स्वतंत्रतापर वे सिर्फ आक्रमण ही नहीं करते, बल्कि, अल्पसंख्य बहुसंख्यावाले लोगों की मेहरबानी पर जिये, ऐसी वस्तुस्थिति निर्माण करना चाहते हैं। इसीलिए राज्यसंस्था की आवश्यकता होती है। लोकतंत्र में राज्यसंस्था ऐसे उदंड और प्रमाथी तत्व का नियंत्रण करती है। लोकतंत्र में जैसे सत्ता के दुरुपयोग की गुंजाइश है, वैसे ही स्वतंत्रता के दुरुपयोग की भी गुंजाइश है। कुछ प्रेशर ग्रुप्स निर्माण होते हैं। उनकी न्यूसन्स व्हॅल्यू बढती है। ज्यादा से ज्यादा न्यूसन्स निर्माण करने की, दबाने की जिसकी ताकत होती है, उतनी ही कीमत और प्रतिष्ठा बढती है। यह समाज के प्रबल तबके के लोग दुर्बल का उत्पीडन और शोषण करने लगते हैं। इसका उपाय लोकतंत्र को ही सीमित किया जाय, यह नहीं हो सकता। स्वतंत्रता का दायरा कम किया जाय, तो अनर्थ होगा। आखिरकार स्वतंत्रता तो मानवीय जीवन का अमिय है। उसे कैसे सीमित कर सकते हैं? स्वतंत्रता में जो व्याधियाँ पैदा होती हैं, उनकी एक ही दवा है। और वह है अधिक स्वतंत्रता। स्वतंत्रता का अर्थ ही यह है कि नरक में भी जाने की स्वतंत्रता

हो। इसका परहेज एक ही है कि मैं अपने लिए नरक का निर्माण कर सकता हूँ, दूसरे के लिए नहीं। दूसरे की स्वतंत्रता पर अतिक्रमण करना स्वतंत्रता का अस्वीकार है। स्वतंत्रता से इन्कार करना होगा। क्योंकि दूसरे की स्वतंत्रता छीनना यह स्वतंत्रता का अस्वीकार ही है।

इसीलिए नियम और नियंत्रण की आवश्यकता होती है। सत्ता के दुरुपयोग का प्रतिकार लोकशक्ति से होना चाहिए, और स्वतंत्रता के दुरुपयोग का प्रतिकार राज्यदंड और लोकशक्ति दोनों के द्वारा होना चाहिए। इसीलिए कुछ प्रतिबन्ध या पाबन्दियां पैदा होती हैं। ये लोकतंत्र के संरक्षक प्रतिबन्धक (Safeguards) कहलाते हैं। ये समाज के निर्बल तबके के लोगों की हिफाजत के लिए जरूरी हैं। दुर्भाग्यवश यह लोकतंत्र के संदर्भ में आजकी अनिष्ट अनिवार्यता है। लोकतंत्र में इसे ही राज्यशक्ति का दंड प्रयोग कहते हैं। ऐसी दण्ड-प्रयोग की क्षमता राज्यसंस्था में अगर नहीं होगी, तो समाज के दुर्बल तबके के लोगों के लिए लोकतंत्र के कोई माने ही नहीं रहेंगे।

जैसे मैंने पहले कहा लोकतंत्र में पथ्य या परहेज मुख्य है, और प्रतिबन्ध या पाबन्दियाँ गौण हैं, फिर भी लोकतंत्र की रक्षा के लिए ही कुछ अंश में ये प्रतिबन्ध अनिवार्य हो जाते हैं। उनका प्रयोग बहुत सावधानी से करना चाहिए। अन्यथा ये प्रतिबन्ध लोकतंत्र का गला ही घोट देंगे। अराजकतासे सत्ता व स्वातंत्र्य ही चौपट होने का डर होता है, इसलिए अराजकता को रोकने के लिए कुछ पाबन्दियाँ आवश्यक हो जाती हैं। समुद्र मंथन में से जो रत्न निकले, उनमें अमृत के साथ साथ जहर और मद्य भी है। विष और मद्य हमारे पुराणों के अनुसार अमृत के सहोदर हैं। इसीलिए मद्य और विष में भी कई बार अमृत के जीवनदायी गुण कुछ मात्रा में पाये जाते हैं। लेकिन इनके इस्तेमाल की एक शर्त है। उनकी मात्रा नपी तुली होनी चाहिए, सूक्ष्म होनी चाहिए। तभी उसमें अमृत की शिफत आ सकती है। इसीतरह लोकतंत्र में प्रतिबन्ध की आवश्यकता भले ही हो, लेकिन इन पाबन्दियों का प्रयोजन यह है कि उनकी आवश्यकता क्षीण होती चली जाये। पाबन्दियाँ धीरे-धीरे कम होती जायें और परहेजों के भरो से लोकतंत्र की सेहत दुरुस्त होती जाय, यह उसके पीछे की भावना है। लोकतंत्र की प्रगति का यही नियम और रास्ता है।

हमारे लोकतंत्र के तीन दुश्मन हैं, त्रिदोष है। एक संप्रदायवाद, दूसरा जातिवाद या भाषावाद और तीन क्षेत्रीय निष्ठा। विनोबाजी के कथनानुसार बहुसंख्य और अल्पसंख्यांक यह नया जातिभेद है। असली सवाल यह है कि हमारा लोकतंत्र हुकुमतपरस्त, सत्ता पूजक होगा या लोकनिष्ठ होगा? वह

तोड़नेवाला होगा या जोडनेवाला होगा ? लोकतंत्र में तीन तत्त्वोंका संरक्षण होना चाहिए। (१) प्रिंसिपल्स ऑफ पॉलिटिकल डेमोक्रसी, लोकतांत्रिक मूल्यों का संरक्षण (२) रुल ऑफ लॉ – न्याय और कानून की सत्ता (३) डिग्निटी ऑफ इंडिविज्युअल– व्यक्ति की प्रतिष्ठा।

आज संसदीय लोकतंत्र है, लेकिन वह लोकसत्ता में परिणत नहीं हुआ है। आज भी लोकतांत्रिक मार्गों का वर्चस्व काफी है। विश्वास भी लोकतांत्रिक संस्थाओं से बाहर के साधनों पर अधिक है। जब तक विधानबाह्य उपायोंका अवलंबन नहीं किया जाता तब तक सत्ताधारी पक्ष कुछ सुनता ही नहीं, ऐसी भावना है। इसलिए जिसमें जितनी जादा उपद्रव की शक्ति होगी, उसका उतना रुतबा बढेगा, यह भावना आज भी कायम है। सारे विरोधी तत्व लोकतांत्रिक मार्ग का त्याग कर रहे हैं। और लोकतांत्रिक साधनों का उपयोग करने की होड़ बढ़ रही है। आज सब यही चाहते हैं कि साधारण नागरिक मूर्च्छित अवस्था में रहे, गफलत में रहे, लोकमत गुमनाम रहे, नागरिक जिसमें राज बदलने की ताकत है वह भयभीत बना रहे, और हमेशा उद्धारकर्ता की खोज में रहे। बंद, घेराव, उपवास, मारपीट सारे आज मुठमर्दों के हाथ में हैं, आज भी जिसकी लाठी उसकी भैंस यह नियम कायम है। एक तरफ गुंडे का डंडा और दूसरी तरफ सत्तावालों का डंडा इस बीच में बेचारा नागरिक पिचक गया है। एक तरफ नेताशाही और दूसरी तरफ नौकरशाही इसमें नागरिक खो गया है। लोकतंत्र में असली शक्ति लोकशक्ति होनी चाहिए। आज सारी शक्ति समाज से निकलकर सरकार में जमा हो रही है। समाज पंगु हो गया है। लोकतंत्र का प्रादुर्भाव सामाजिक तथा आर्थिक क्षेत्र में नहीं हो सका। इसलिए मजदूर युनियन, राजनैतिक पक्ष तथा अन्य सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक संस्थाओं में लोकतांत्रिक विचार नहीं पहुँच पाया। समुदाय या भीड का राज याने लोकसत्ता नहीं। पिक्विक का एक प्रसिद्ध किस्सा है। एक मित्र ने पिक्विक से पूछा, "जब मन में संदेह हो तब क्या करना चाहिए ?" पिक्विक ने उत्तर दिया, "भीड के पीछे जाना चाहिए।" फिर से सवाल उठा, "अगर दो भीडें हों तो क्या करें" जबाब मिला, "जो बडी भीड हो, उसके पीछे चलो।" बहुसंख्य के पीछे जाना या बडी भीड़ के पीछे जाना लोकतंत्र नहीं है। भीड में चेहरे होते हैं। दिमाग या व्यक्तित्व नहीं होता। भीड के राज में तो जो व्यक्ति लोकप्रियता के बाजार में नीलाम की सब से बडी बोली बोलता है, वही नेता होगा। यह लोकतंत्र नहीं हम यह नहीं भूल सकते कि भगवान ने जितने कंधे बनाये, उतने ही सिर बनाये। हर कंधेपर एक ही सिर नहीं है। हर इन्सान को विचार करने की क्षमता होगी और बहुमतसे भिन्न मत रखने की और प्रगट करने की आजादी होगी, यह

लोकतंत्र की बुनियाद है । सामान्य नागरिक का लोकतंत्र में योगदान वोट (Vote) या मतदान की प्रक्रिया के माध्यम से होता है । चुनाव की बुनियाद हृदय-परिवर्तन है। मत बदल सकता है। इसलिए हर पाँच साल बाद मतदान की प्रक्रिया से राय जानने की जरूरत होती है । आदमी का सिर काट देने से विचार खत्म नहीं होता । लेकिन आजकल विचार–परिवर्तन या हृदय परिवर्तन से भी ज्यादा सिर काट देने पर जोर ज्यादा है । जहाँ "बेलेट" पर का विश्वास उडता है वह "बुलेट" की शुरुआत होती है । इसलिए लोकशिक्षणद्वारा नागरिक को उसके मतदान के हक का महत्व समझना होगा । चाहे जितनी रिश्वत देकर या डाका डालकर वोट छीना या खरीदा नहीं जा सकेगा, ऐसी परिस्थिति निर्माण करनी होगी । जैसे बच्चे भूखे मरते हैं, या बहुत गरीबी है, इसलिए स्त्री अपना सतीत्व बेचकर पेट नहीं पालती । इसी सतीत्व के ऊँचे स्तर पर नागरिक के मतदान के हक को उठाना होगा । आज तो चुनाव के क्षेत्र में एक तरफ उम्मीदवार है, जो मत के याचक हैं, और मत खरीदना या छीनना चाहते हैं, तो दूसरी तरफ मत के ठेकेदारों का भाव बढ़ रहा है । लोकतंत्र में हर व्यक्ति को एक ही वोट देने के बावजूद वोट नीलाम हो रहे हैं । मुझे याद है, एक गांव में एक प्रसिद्ध डॉक्टर थे । आदमी बेचारा बहुत शरीफ था । उनके पास म्युनिसिपालिटी के चुनाव के समय सौ-दो सौ मतदाता पहुँचे । सबने आग्रह किया कि उन जैसे व्यक्ति को चुनाव जरूर लड़ना चाहिये, ताकि म्युनिसिपालिटी कारोबार सुधार सके । दुर्भाग्यवश डाक्टर साहब उनके बातों में आ गये और चुनाव के लिए खडे हो गये । डाक्टरसाहब को केवल दो मत मिले । उनकी समझ में सारी बात आ गयी । लेकिन वे वृत्ति से खिलाडी थे । इसलिए एक थाली में मिठाई लेकर अपनी लडकी के साथ हर मतदाता के घर गये । हर मतदाता से उन्होंने कहा, "आप मेरे पास आये थे । मुझे चुनाव लडने के लिए आपने आग्रह भी किया । इसके बावजूद मैं हार गया । मुझे दो ही मत मिले । इनमें से एक मत मेरा निश्चित है । मेरी पुत्री कहती है कि दूसरा वोट उसका है, पर इसपर मेरा विश्वास नहीं । क्योंकि आप इतना आग्रह करने आये थे, इसलिए यह वोट आप ही का होना चाहिए । इसलिए मैं आपको मिठाई देने आया हूँ।" डाक्टर साहब इस तरह करीब दो सौ मतदाताओं के घर गये और ताज्जुब की बात यह है कि हर मतदाता ने उनसे यही कहा कि उसने उन्हें वोट दिया है । यह आजके चुनाव का चित्र है । इन मतदाताओं में पढे लिखे लोग भी थे । सारे लोग मिल–जुलकर यही कहते हैं कि चुनाव क्षेत्र में भ्रष्टाचार है । ग्रामपंचायत के चुनाव से लेकर विश्व–विद्यालय के चुनाव तक यही सिलसिला चलता है । आज देशमें वोट खरीदा

जाता है। जात और धर्म के नाम पर दबाया जाता है। जबरदस्ती से छीना जाता है। इसलिए सामान्य नागरिक को अपने वोट का मूल्य समझकर प्रयोग करने को सीखना होगा। चुनाव प्रक्रिया में से भ्रष्टाचार खत्म करने की अखिल भारतीय योजना बनानी होगी राजनैतिक दलों को भी कुछ आचार-संहिता का स्वीकार करना होगा।

लोकतंत्र में उम्मीदवारी कम होनी होगी और जिम्मेदारी ज्यादा। आज का उम्मीदवार लोकतंत्र के बाजार में नीलाम की बोली बोलने के लिए खडा हो जाता है. महात्मा गांधी ने यह कहा था कि हमें रामराज्य चाहिए. रामराज्य में दशरथ के चार पुत्र थे, जिनका राज गद्दीपर हक था। लेकिन उनमें से कोईभी गद्दी के लिए उम्मीदवार नहीं था। रामचंद्रजी का, जेष्ठ पुत्र होने के कारण गद्दीपर सबसे अधिक हक था।, वे अपने पिताने अपनी माँ को गफलत में दिये हुए वचन की पूर्ति के लिए वनवास में चले गये। जिस भरत के लिए इतना बडा रामायण हुआ, उसने वह सत्ता अपनी नहीं मानी, वह जंगल में जाकर रामचंद्रजी की पादुकाएँ लेकर वापस आया, और उनके प्रतिनिधिके रूपमें उसने राज्य चलाया। जिसे राजगद्दी मिली, उसने वह अपनी नहीं मानी, और न वह उसके लिए उम्मीदवार रहा। संत तुलसीदासने रामचरितमानस में प्रभु वनवास से पधारे तब का उनका तथा भारत का वर्णन किया है। लिखा है, कि दोनों के चेहरे से यह पता नहीं लगता था कि वनवास से कौन आया है। असल में देखा जाय, तो प्रभु रामचंद्र का राज्य रामराज्य नहीं था। रामचंद्रजी राज-गद्दीपर बैठे, वहाँ रामायण खत्म ही जाता है, बचता है, वह उत्तर रामरित। रामराज्य वह था, जो भरत ने राजगद्दीपर हक न मानते हुए रामचंद्रजी के प्रतिनिधि के नाते चलाया था। जिसमें गद्दीके हकदार राजत्याग कर देते हैं। और राजगद्दीपर बैठनेवाले यह अपना राज है, ऐसा न समझकर संन्यस्त जीवन बिताते हैं, वही रामराज्य होता है। आज तो सारे ही हकदार उम्मीदवार बनना चाहते हैं। शादीमें निमंत्रित किये गये खुद दूल्हा बनना चाह रहे हैं। चुनकर आये प्रतिनिधि खुद को लोकप्रतिनिधि नहीं मानते, वे अपने दायरे के बाहर नहीं आ पा रहे हैं। वे यह भूल जाते है कि वे चाहे विशिष्ट क्षेत्र से चुने गये हों, वे प्रतिनिधित्व उनका भी करते हैं, जिन्होंने उन्हें वोट नहीं दिये हैं। लोकतंत्र भले ही पार्टियों का कहलाता हो, लेकिन प्रतिनिधि जब चुन लिया जाता है, तब वह केवल पार्टी का नहीं, समस्त नागरिकों का बन जाता है। उसे विचार सारे देशका करना होता है। यही लोक-तांत्रिक विचार है।

वर्तमान लोकनीति के त्रिदोष हैं। १) अधिकार का दुरुपयोग, २) अराजकता, ३) गुंडाशाही और घुसखोरी और इसीलिए राज्यव्यक्ति का नहीं कानून का होना चाहिए ऐसा हम मानते हैं। अगर राज कानून का नहीं होगा, तो व्यक्ति का मूल्य खो जायेगा, लोकतंत्र सक्रिय नहीं हो पायेगा। वह मिथ्या, जाली या काउँटर फोट ही होगा। इसे एक उदाहरण देकर समझाउंगा। मेरे पिताजीने

जब कई साल पहले क्रिप्स का संसदीय मंडल आया था, तब एक उदाहरण दिया था। एक मुर्गियों का बेपारी था, जिसका धंदा मुर्गियों को काटकर मसालों में तलकर हवाबंद डिब्बे में भरकर बेचने का था। एकबार उसने यह सोचा कि आज सारी दुनिया में प्रजातंत्र का बोलबाला हो रहा है। सब स्वयं निर्णय का हक चाहते हैं। इसलिए यह हक अपनी मुर्गियों को भी देना चाहिए। इस पवित्र भावना से उसने मुर्गियों की सभा बुलाई और उनके सामने प्रस्ताव रखा, "ऐ मुर्गियो, आप आज के बाद यह गुप्त मतदान पद्धति से तय करेंगी कि आपको काटने के बाद में किस मसाले में तलूं?" एक मुर्गी खडी हो गयी। उसने प्रश्न पूछा कि समझ लीजिए कि हमने ऐसा मतदान किया कि आप हमें काटेंगे नहीं और हम जिंदा रहेंगी, तो? व्यापारीने उत्तर दिया, "वह सवाल उठता ही नहीं। उसका निर्णय पहलेही हो चुका है। आपको गुप्त मतदान का हक सिर्फ मसाला चुनने का है।" मित्रो, अगर कानून का राज नहीं रहा, तो हर पांच साल बाद नागरिक को चुनाव में मतदान करने का जो हक है, वह सिर्फ मसाला चुनने का हक रहेगा। जब जब अपने ही देश में नहीं, बल्कि सारी दुनिया में लोकमत दबाया गया, लोगों को मतप्रदर्शन का अवसर नहीं रहा, तब-तब केवल न्यायालयों ने ही व्यक्ति के मूल्य का एवं अस्मिता का संरक्षण किया है। बहुमत से भिन्न मत रखने की एवं प्रकट करने की आजादी का संरक्षण सिर्फ न्यायालयों ने ही किया है। न्याय का मूल्य है, विवेक और उचित या अनुचित का ज्ञान। आज लोगों की न्याय की परिभाषा ही बदल गयी है। हमारे हक में फैसला हुआ तो न्याय हुआ, और हमारे खिलाफ फैसला हुआ तो अन्याय हुआ। यह न्याय की परिभाषा बन रही है। आदिकाल में मनुष्य को, जो भी उसकी इच्छानुसार होना था वही उचित और न्याय संगत प्रतीत होता था। परंतु धीरे-धीरे सभ्यता बढ़ती गयी, मनुष्य में यह भाव आता गया कि उसे दूसरों के हित का एवं अधिकारों का ख्याल रखना होगा। लोकतंत्र में लोकसत्ता पर अंकुश रखने के लिए न्यायालयों की जरूरत होती है। लोकनीति में अधिकार का दुरुपयोग और अराजकता या गुंडाशाही से बचाने के लिए सक्षम और स्वतंत्र न्यायसंस्था आवश्यक है। अंग्रेजी में प्रसिद्ध वाक्य है। "Who will watch the watchman" पहरेदार की नियुक्ति कर देने से ही कर्तव्य की समाप्ति नहीं होती। पहरेदार ठीक से काम करता है, या नहीं, यह देखने की जरूरत होती है। लोकतंत्र में यह काम न्यायसंस्था तथा अखबार किया करते हैं। आज दुर्भाग्यवश कानून का राज कोई नहीं चाहता।

आज अपने समाज में प्रतिष्ठित नागरिक के तीन वर्ग हैं। सबसे प्रतिष्ठित वह माना जाता है, जिसे सारी चीजें मुफ्त में मिलती है। फिर वह सिनेमा का टिकट हो, या और कोई बडी चीज हो। जिसे राशन का अनाज नहीं खाना पड़ता, वह प्रतिष्ठित माना जाता है।

नंबर दो का प्रतिष्ठित वह है जिसे सारी चीजें पैसे देकर तो जरूर मिलती हैं, लेकिन पिछले दरवाजेसे मिलती है। और इस देश का सन्मान्य ओर सामान्य नागरिक जो हमारे संविधान का विषय ही नहीं, बल्कि विधाता है, उसे घंटों ही नही, कई दिनों तक लम्बी कतारों में खडे रहना पड़ता है। और नंबर लगाने पर अनाज खत्म हो गया, राकेल का स्टाक नहीं, ऐसा जबाब मिलता है। मतलब यह है कि कानून पालनेवाले सामान्य नागरिक कोई हमारे लोकतंत्र में भी सबसे अप्रतिष्ठित माना जाता है। व्यक्ति की प्रतिष्ठा के ये नापदण्ड हैं। मैं जब नागपुर में वकालत करता था, तब मेरे उत्तर प्रदेश में रहनेवाले एक दोस्त मुझसे मिलने आये थे। चर्चा के बीच उन्होंने मुझसे पूछा, "धर्माधिकारी, इतने साल नागपुर में रहते हो, तुम्हारी इस शहर में प्रतिष्ठा कितनी है? "मैं अचम्भे में पड़ गया। क्योंकि प्रतिष्ठा गिनने का कोई गणकयंत्र तो नहीं है। मैंने बहुत सोच समझ के बाद उनसे मजाक में कहा कि "भाई यह कहना बहुत मुश्किल है। लेकिन इतना जरूर कह सकूंगा कि सारे शहर में साइकिल को बिना दियाबत्ती लगाये घूम कर आया तो भी पुलिसवाला मुझे नहीं पकडेगा। इतनी मेरी प्रतिष्ठा है।" हमने ऐसा सुना था कि मुगलों के राज में दस खून माफ' पांच खून माफवाले सूबेदार यहाँ जमीनदार थे। आजादी के तैंतीस साल बाद हम सब खून माफ होनेवाले सूबेदारों के राजतक पहुँच रहे हैं। आप की कानून तोड़ने की क्षमता यह आपकी प्रतिष्ठा नापने का नापदण्ड बन रहा है। जिस व्यक्ति तक कानून के हाथ नहीं पहुँच सकते, वह प्रतिष्ठित व्यक्ति माना जाता है। और जिस बेचारे सामान्य नागरिक-तक कानून के हाथ पहुँचते हैं, वही सिर्फ कानून पालता है। और यही हमारे लोक-तंत्र की शोकांतिका बन रही है। अगर कानून का राज नहीं होगा, तो लोकतंत्र खोखला हो जायेगा। दुर्भाग्यवश आज हमारे देश में आजादी के इतने सालों बाद भी जातिकी जातियाँ क्रिमिनल गुनहगार-मानी जाती हैं। मैं अभीतक यह समझ नहीं पाया कि समूची जाति कैसे गुनहगार होती है। कुछ व्यक्ति गुनहगार हो सकते हैं। हमारे संविधान के मुताबिक उन लोगों को चुनाव लड़ने का हक नहीं, जिन्हें अदालत में विशिष्ट अपराध के लिए सजा हुई है। लेकिन टैक्स न भरनेवाले, संविधान में निहित समता के तत्वों को न पालनेवाले व्यक्ति आज भी प्रतिष्ठित माने जाते हैं। ग्राहकों का जन्म कर्तव्य की कोख से होता है, ऐसा महात्मा गांधी मानते थे। और आचार संहिता से लोकतंत्र अनुप्राणित होता है, यह उनकी भावना थी। नागरिक जीवन मे, फिर वह सामाजिक हो या राजनीतिक, ऐसे टॅक्स चुरानेवाले व्यक्तियों को कोई पद या प्रतिष्ठा नहीं मिलेगी। यह लोकतंत्र में परहेज है। लोकतंत्र में सबका हिस्सा हो, इसलिए वोट और टॅक्स ये दो मार्ग अपनाये जाते हैं। सबका वोट हिस्सा और सब का त्याग टॅक्स। शंकराचार्य ने भगवान की शक्ति का वर्णन

करते समय ऐसा कहा कि भगवान भी अपनी बनायी नियति का भंग नहीं कर सकता। भगवान की शक्ति की मर्यादा नियति का पालन है। और लोकतंत्र में कानून पालने की प्रवृत्ति लोकतंत्र की असली मर्यादा है। वही प्राणदायी दवा है।

हमारे संविधानने कानून के सामने सारे लोग समान माने जायेंगे या विधि के समक्ष की समता, यह व्यक्ति के मूल अधिकार का हिस्सा माना है। धर्म, मूल वंश, जाति, लिंग या जन्मस्थान के नामपर कोई विभेद नहीं हो सकेगा। यह भी मर्यादा मानी है। इस मर्यादा के बावजूद सामाजिक तथा आर्थिक दृष्टिसे पिछडे हुए नागरिक के लिए सहूलतें देने की योजना भी संविधान में सम्मिलित है। अगर यह सहूलतें देने की योजना संविधान में नहीं होती, तो संविधान में निहित समता का तत्त्व मूलभूत होते हुए भी अमानवीय बन जाता। समता का मतलब ही यह है कि समसमान लोगों से सरीखा बर्ताव किया जाय। असमान लोगोंसे समान बर्ताव यह समता नहीं होगी, वह तो असमानता होगी। मैं ब्राम्हण कुल में पैदा हुआ। उसमें भी धर्माधिकारी हूँ। इसलिए उम्र के पांच साल से "शुभंकरोति" कहने की मुझे आदत है। मेरी नौकरानी का लडका आधी उमर तक या उम्रके १४ साल तक सिवा गालियों के कुछ सीखा ही नहीं। फिर भी मेरी माँग यह है कि उसे और मुझे समान सहूलतें मिलनी चाहिए। यह माँग सिर्फ समता विरोधी ही नही बल्कि अमानवीय हैं। टूर्नामेंट में दौडने की स्पर्द्धा ऐसी नहीं हो सकती कि एक स्पर्धक की दौडने की शुरुआत दूसरे स्पर्धक से एक मील की दूरी के आरंभ-बिंदु से हो। इस स्पर्धा का आरंभ ही असमान होगा। जब तक दोनों स्पर्धकों के दौडने का आरंभ-बिंदु एक ही नहीं होगा, तब तक न्यायोचित स्पर्धा हो ही नहीं सकती। आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से पिछडे हुए वर्ग का आरंभ-बिंदु काफी पीछे होने के कारण (Equalisation of the Starting Point) की दृष्टि से उन्हे सहूलतें देकर आगे गये हुए वर्ग के साथ लाने के लिए संविधान ने "कन्सेशन" या सहूलतों की योजना की। इन सहूलतों के बारे में पढे-लिखे लोगों के मन में काफी संदेह है। हर पढा-लिखा आदमी यही सवाल पूछता है कि यह सहूलतों की राजनीति कब खत्म होगी? कोई यह नहीं पूछता कि अस्पृश्यता कब खत्म होगी? आर्थिक या सामाजिक पिछडापन कब खत्म होगा? जब तक अस्पृश्यता या आर्थिक व सामाजिक पिछडापन खत्म नहीं होता, तब तक जीवन के आरंभबिंदु समान नहीं हो सकेंगे। जैसा कि मैंने पहले कहा है। अल्पसंख्य हमेशा अल्पसंख्यही होंगे। संख्या, संपत्ति और साधन तीनों की दृष्टि से वे हमेशा कम पडेंगे। इसलिए हरिजन, गिरिजन और पिछडा वर्ग बहुमत या बहुसंख्या के बल पर कभी नहीं जी सकेंगे। अगर न्यायालय नहीं रहे, और कानून का राज नहीं रहा, तो इन्हें लोक जीवन में कभी न्याय नहीं मिलेगा। इन सारे पिछडे वर्गों के

लिए न्यायालय ही एकमात्र शरणतीर्थ है। चुनाव की प्रक्रिया से या सार्वत्रिक मतदान से, जिस समाज में सवर्ण बहुसंख्य अधिक होते हैं, वहाँ अस्पृश्यता खत्म नहीं की जा सकती। उसके लिए कानून का राज होना जरूरी होता है। क्योंकि न्यायालयों में न्याय लोकसंख्या या बहुमत के भरोसे नहीं होता। न्यायालय व्यक्ति का मूल्य और उसकी अस्मिता का संरक्षण न्याय की प्रक्रिया से करता है। इसलिए स्वतंत्र न्याय–संस्था लोकतंत्र की प्राणदायी जरूरत है। पुराण काल में वशिष्ठ मुनि की सत्ता थी। इस सत्ता का वर्णन इन शब्दों में किया जाता था कि उसपर राजा की भी सत्ता नहीं चलती। राजसत्ता से भी परे ऐसी यह वशिष्ठ–सत्ता थी जिसे हम कानून के राज की सत्ता कहते हैं। और इसीके कारण लोकतांत्रिक समाज में नागरिक को कुछ परहेज पालने पडते हैं।

इस संदर्भ में एक सवाल हमेशा खडा होता है कि लोकसत्ता में कानून भंग, या सत्याग्रह की क्या मर्यादाएँ होंगी ? महात्मा गांधीने जो सत्याग्रह का विचार रखा, वह अंतरात्मा के अनुसार जीने का हक, इस दृष्टि का था। इसलिए वह सविनय कानून भंग का रूप लेता था, अविनय नहीं। सत्याग्रही को सारी मर्यादाओं का पालन सचाई और कडाई से करना पडता था। सत्याग्रह का स्वरूप समष्टि विरोधी या लोकसत्ता विरोधी तत्व का नहीं था, बल्कि वह वास्तविक लोकसत्ता का और नागरिक स्वतंत्रता का यथार्थ अधिष्ठान माना जाता था। जिसके मनमें कानून के लिए आदर है, वही सविनय कानून भंग करने का अधिकारी माना जाता था। गांधीजी के कानून भंगसे अराजकता पैदा नहीं होती थी। क्योंकि गांधीजी का सत्याग्रही, जो किया, उसे कबूल करता था। और कानून भंग के लिए कानून में जो सजा होती थी, उसे सामाजिक नियम समझकर खुशी से भुगतता था। कानून तोडने पर कानून भंग के लिए कडी से कडी सजा खुशी से भुगतने के लिए जेल जानेकी तैयारी यह उसकी मर्यादा थी। जो कानून तोडेंगे वह ऐसा होना चाहिए, जिसके तोडने से नैतिकता का भंग न हो। शराब बंदी, अस्पृश्यता निवारण, आदि सामाजिक कानून भंग करने का सत्याग्रही को हक नहीं था। जिस सत्ता के खिलाफ हम कानून भंग का प्रयोग करते हैं, उस सत्ता के लिए हमारे मन में कटुता नहीं होनी चाहिए, और सत्याग्रह समाज की सुव्यवस्था के खिलाफ या विरोध में नहीं होना चाहिए यह भी उसकी मर्यादा थी। आज के सत्याग्रह अविनय कानून भंग के हैं। उपोषण के भी इतने प्रकार हैं कि पूछो मत। चक्की–उपोषण, लक्ष्यवेधी उपोषण, आमरण उपोषण आदि। ये सारे एटम बम की तरह शस्त्र के नाते उपयोग में लाये जाते हैं। आमरण उपोषण का भी उपोषण करनेवाले के मरण से कोई सम्बन्ध नहीं होता। बल्कि जिसके खिलाफ उस शस्त्र का प्रयोग किया जाता है, उस विरोधी व्यक्ति के

मरण से आनन्द मिलता है। इसीलिए कानून भंग की मर्यादाएँ लोकतांत्रिक जीवनप्रणाली में निहित है। इसीलिए न्यायालय की प्रतिष्ठा और कानून की आबरू कायम रखना लोकतंत्र में आवश्यक है। अगर कानून का राज नहीं होगा और व्यक्ति का राज होगा, तो लोकतंत्र चल ही नहीं सकता। यूं तो डिक्टेटर को भी कानून की आवश्यकता होती है। मार्शल लॉ भी कानून ही है। डिक्टेटर कानून का उपयोग अपनी सत्ता कायम रखने के लिए करता है। अन्य शस्त्र की तरह उसका प्रयोग दूसरोंपर करता है। वह कानून उसके लिए नहीं होता, और न कानून पालने की जिम्मेदारी डिक्टेटर पर होती है। लोकतंत्र में कानून के सामने सब समान होते हैं। और कानून पालने की जिम्मेदारी सब पर होती है।

गुंडाशाही या घूसखोरी से बचने के लिए नागरिक जीवन में नागरिक शक्ति का प्राणवान होना जरूरी होता है। आज की लोकसत्ता के संबंध में आस्तिक वह है, जिसका मनुष्य की मूलभूत सतप्रवृति पर विश्वास हो। जो यह मानता हो कि मनुष्य मूलतः सतप्रवृत्त है, और परिस्थितिजन्य विकारों से ही वह दुष्ट होता है, दुनिया में नष्ट, खोया हुआ कोई नहीं सब का उद्धार हो सकता है। लोकसत्ता में सब नागरिक बन सकते हैं, यह उसकी खूबी है। दुर्जन की सतप्रवृत्ति में भी विश्वास यह लोकतंत्र की अस्तिकता है। गुंडा कोई बाहर से आया हुआ व्यक्ति नहीं, बल्कि हमारा ही सगा होता है। घूसखोरी या भ्रष्टाचार की प्रतिष्ठा समाज जीवन में नहीं होती और न भ्रष्टाचार शिष्टाचार बनता है। आज इने-गिने गुंडे समस्त नागरिक जीवन समाप्त कर सकते है। क्योंकि नागरिक सोया हुआ है। जिस समाज में सज्जन शक्ति सोयी हुई होती है, उस समाज में गुंडों का ही राज होता है। सज्जनों का आंदोलन या जागरुकता लोकतंत्र के संरक्षण के लिए आवश्यक है। आज गुंडों की मेहरबानी पर सज्जन नागरिक जी रहा है। किसी भी आंदोलन के दो ही पक्ष माने जाते है। एक आंदोलन करनेवाला और दूसरा जिसके खिलाफ आंदोलन होता है वह। सामान्य नागरिक सिर्फ उसके परिणाम झेलता है। विदर्भ में एक प्रसिद्ध कथन है। हेले की टक्कर में कोई भी हेला जीते, इसका कोई महत्व नहीं, क्योंकि कोई भी हेला जीता, तो भी जिस खेत में टक्कर होती है, उस खेत का खराबा हुए बिना नहीं रहता। विचार खेत और फसल के संरक्षण का करना होगा, दंडशक्ति के प्रयोग का नहीं। हडताल, बंद, घेराव, मोर्चा के परिणाम सामान्य उपभोक्ता और नागरिक को ही सहने पड़ते हैं। मुनाफा हुआ, तो शेअर होल्डरों को डिविडंड मिलता है, मजदूर को बोनस मिलता है, लेकिन वस्तु की कीमत कम हुई और नागरिक के पल्ले कुछ पडा, ऐसा कभी नहीं होता। ज्यादा से ज्यादा थोडी सी लाटरी की योजना उसके लिए होती है।

लेकिन लाटरी या सट्टा पूंजीवाद के कोख से जन्म लेता है। वह राम की कमाई नहीं, हराम की कमाई होती है। और जिस समाज में हराम की कमाई एवं काले पैसे की प्रतिष्ठा होती है उस समाज का आर्थिक ढाँचा और बाजार हमेशा काला बाजार होता है। हमारा देश गरीब देश कहलाता है। लेकिन गरीब की कोई प्रतिष्ठा नहीं। लालबहादुर शास्त्री अपने बीवी-बच्चों के लिए बिना कुछ छोडे ताश्कंद में मरे। उस समय मैं मजदूर आंदोलन में काम करता था। एक मजदूर ने मुझसे पूछा कि साहब, आपका इस पर विश्वास है कि इतने साल सत्ता पर रहा व्यक्ति जो रेल्वे का, व्यापार का मंत्री था, प्रधान मंत्री था, मुफ्त में मर जायेगा? उस मजदूर के अनुभव के मुताबिक ऐसा व्यक्ति निर्धन स्थिति में नहीं मर सकता। वह मरण मुफ्त का मरण है। हमारी दानशूर शब्द की परिभाषा ही यह है कि जिस इन्सान ने काले बाजार में लाखों रुपये कमाये होंगे और उनमेंसे कुछ किसी स्कूल के लिए, किसी मंदिर के लिए दान में दिये होंगे वह दानशूर। लेकिन समाज में कुछ व्यक्ति ऐसे भी होंगे, जो किसी तत्व के लिए या सिद्धांत के लिए गरीबी में रहना पसन्द करते होंगे, लेकिन मौका मिलनेपर भी गलत रास्ते से पैसा कमाने की अभिलाषा नहीं रखते, वे दानशूर नहीं कहलाते, वे महामूर्ख होते हैं। अंग्रेजीमें 'सिनिक' शब्द की एक परिभाषा है। "One who knows price of everything but value of nothing is a cynic" जो हर वस्तु की कीमत जानता है, पर मूल्य नहीं जानता। उसकी निगाह में माँ के दूध की कोई कीमत नहीं होती, क्योंकि माँ का दूध बेचा भी नहीं जाता और खरीदा भी नहीं जाता। इसलिए लोकतंत्र में नागरिक के जीवन मूल्य भी अलग होने पडते हैं। साधन शुचिता यह उसकी जीवन प्रणाली होती है।

आज तो मानो सब ऐसे जी रहे हैं, जैसे यह देश किसी का है ही नहीं पूज्य दादा ने इस सारी परिस्थिति का वर्णन म्युनिसिपालटी की सड़क का उदाहरण देकर किया था। म्युनिसिपालटी की सड़क यह हमारे देश का अप्रतिम प्रतीक है। समझ लीजिए, मैंने इस सडक पर कचरा फेंका, और आपमें से किसी ने आपत्ति उठाई, तो मैं जबाब दूंगा। क्या यह तुम्हारी सड़क है? तुम टोकनेवाले कौन हो? अगर आप जवाब देंगे, यह हमारी तो नहीं है। लेकिन कचरा अच्छा नहीं दीखता, आप साफ कर दीजिये। इसपर मैं जवाब दूंगा, क्या यह मेरी सड़क है, जो मैं साफ करूँ? जो मेरी भी नहीं और आपकी भी नहीं होती, उसे हम म्युनिसिपालिटी की सड़क कहते हैं। वरना यह कहना ज्यादा उचित होगा कि जो कचरा फेंकने के लिए सब की होती है, और साफ करने के लिए किसी की नहीं होती, वह सार्वजनिक या राष्ट्रीय संपत्ति कहलाती है। जिसमें नागरिक अपने कर्तव्य को भूल जाता है, और सिर्फ हक का ही विचार करता है, उस देश में लोकतंत्र कभी नहीं पनपता।

स्वामी रामानंद तीर्थ ने इस सारी परिस्थिति का वर्णन "मच्छर-दानी की संस्कृति" इन शब्दों में किया था। मच्छर काटते हैं। इसलिए मैं मच्छरदानी लगाकर सोता हूँ। मच्छरदानी के कारण मच्छरों से मेरा संरक्षण होता है। लेकिन इसका मतलब यह तो नहीं कि मच्छर खत्म हो गये। मच्छर खत्म होने के लिए जहाँ मच्छरों की पैदाइश होती है, वह स्थान ढूंढकर मच्छर मारने की या उनकी पैदाइश रोकने की दवा फैलानी पडती है। योजना बनानी पडती है। वैसे ही सामाजिक और आर्थिक असंतुलन जिन कारणों से पैदा होते हैं, उनके निराकरण की योजना लोकजीवन में बनानी होगी। आज दुर्भाग्यवश हमारे सामाजिक जीवन के सामान्य नियम ही बदल रहे हैं। अखबार की भाषा में खबर या न्यूज उसे कहते हैं,। जो सामान्य नियम नहीं होता, जो (नॉर्मालिटी) normality, नहीं होती। मैं औरंगाबाद प्लेन से खुशहाल और जिंदा पहुँचा, इसकी न्यूजव्हॅल्यू कुछ नहीं। मेरे हवाई जहाज को कुछ हो जाता, तो अखबार में छपता। आप आजकल की खबरें पढिये। बम्बई के अखबार में एक खबर मैंने पढी। किसी स्त्री का पर्स बस मे गिर गया था, एक सज्जन को मिला, वह पुलिसमैन था। उसने उस महिला का पता लगाकर वह पर्स, जिसमें एक हजार रुपये थे, लौटा दिया। अखबार में फ्रन्ट पेज पर न्यूज छपी, "पुलिसवाले की ईमानदारी" क्योंकि यह नॉर्मालिटी नहीं है। आज आजादी के तीस साल बाद ईमानदारी की खबरें अखबार में छपती हैं। यही तो असली वेदना है। लोकतंत्र में न्याय का यह मूलभूत सिद्धान्त है कि कर्तव्यपालन के लिए कोई पुरस्कार नहीं मिलता, लेकिन गुनाह करे, तो उसे सजा मिलती है। क्योंकि कर्तव्यपालन सामान्य नियम है, अपराध करना अपवाद है। महात्मा गांधी ने लोकतंत्र अनुप्राणित करने के लिए क्रांति के कुछ प्रतीक माने थे। एक झाडू, दो चरखा, और तीन सामुदायिक प्रार्थना और चार अन्याय के खिलाफ आन्दोलन। सत्याग्रह और झाडू धार्मिक और सामाजिक असंतुलन समाप्त करने का प्रतीक था। जाति प्रथा में सबसे नीचे का आदमी याने भंगी। इसीलिए ब्राम्हण के हाथ में भी झाडू होगा, तो जातीयता नष्ट होने में मदद होगी ऐसा गांधीजी मानते थे। पावित्र्य भावना, जातिभेद की जड़ होने के कारण उसका अंत इस प्रक्रिया से होगा। यह उसके पीछे की भावना थी। महाराष्ट्र के प्रसिद्ध संत गाडगे महाराज, सेनापति बापट, आचार्य विनोबाजी आदि लोगों ने सार्वजनिक सफाई अपने जीवनक्रम का अभिन्न हिस्सा माना था। इस झाडू से सिर्फ बाहर की सफाई ही नहीं, लेकिन अन्तरात्मा का शुद्धीकरण भी होगा, ऐसी इसके पीछे की भावना थी। आज भी समाज के प्रतिष्ठित लोग सार्वजनिक सफाई के कार्यक्रमों में गांधी जयंति के या अन्य सुअवसर पर शामिल होते हैं। फर्क सिर्फ इतना है कि अखबारवाले तथा फोटोग्राफर

जब तक रुकते हैं, तब तक ये अपने हाथ में झाड़ू पकडकर खडे होते हैं, बाद में घर चले जाते हैं। मैंने भी अपने जीवन में इसी तरह सार्वजनिक सफाई में हिस्सा लिया, लेकिन अपना कमरा कभी साफ नहीं किया। अपना कमरा साफ करना यह तो थँकलेस (Thankless) है। उसके बारे में अखबार में कुछ छपकर भी नहीं आता, और न फोटो छपती है। सारांश में, सार्वजनिक सफाई में भाग लेने-वाले सफाई के कार्यक्रम को अपने जीवन का हिस्सा मानते ही हैं, ऐसी बात नहीं। गांधीजी का झाड़ू (क्रांति का प्रतीक) जाति प्रथा को खत्म कर सामाजिक असंतुलन और अस्पृश्यता को मिटाने का एक रचनात्मक कार्यक्रम था। इसके पहले जाति-प्रथा के बारे में मैं काफी बोल चुका हुँ, अतः उन बातों को अब यहाँ दोहराऊँगा नहीं।

चरखा आर्थिक असमानता को खत्म करने के लिए आवश्यक प्रतीक माना गया। वह शरीरश्रम की प्रतिष्ठा केवल आर्थिक ही नहीं, बल्कि सांस्कृतिक मूल्य है। आज समाजमें प्रतिष्ठा उसकी है, जो कम-से-कम शरीरश्रम करता है, या जिसे बिलकुल शरीरश्रम नहीं करना पडता। हमारा नारा तो है कि किसान और मजदूर का राज होना चाहिए। लेकिन आज कोई मजदूर यह नहीं चाहता कि यह मजदूर बना रहे, या उसका लडका मजदूर बने। सब कोई व्हाइट कॉलर वर्ग में शामिल होना चाहते हैं। क्योंकि शरीरश्रम करना अप्रतिष्ठित माना जाता है। मेरे पास म्युनिसिपल कार्पोरेशन का एक कर्मचारी जो मेकेनिक था, एक बार आकर कहने लगा कि मैं उसकी सिफारिश करूँ ताकि वह कुछ दिन के लिये क्लर्क बन सके। मैंने उसे कहा कि क्लर्क की तनखाह तो मेकेनिक से कम है। फिर तुम क्लर्क क्यों बनना चाहते हो ? उसने जवाब दिया कि मेकेनिक की तनखाह क्लार्क से ज्यादा जरूर है, लेकिन समाज में व्हाइट कॉलर की प्रतिष्ठा अधिक होने से मुझे अपने समाज में कोई लडकी देने के लिए तैयार नहीं। मैं कुछ दिनों के लिए अगर क्लर्क बनूंगा, तो मेरी शादी हो सकेगी। और शादी के बाद जब बीबी को यह पता चलेगा कि इतनी तनखाह में घर नही चलता, तब शायद वह मुझे फिर मेकेनिक बनने देगी। जिस समाज में श्रम की प्रतिष्ठा नहीं होती, उस समाज में हरामखोरों की ही प्रतिष्ठा होती है। इसीलिए गांधीजी कहते थे, कि हर व्यक्ति जो कपड़ा पहनता है, उसके लिए सूत कातना अनिवार्य है। श्रमिक को प्रतिष्ठा लोकतांत्रिक समाजवाद की बुनियाद है। लोकतंत्र कोरा विचार नहीं वह एक जीवन पध्दति है।

इस संदर्भ में मुझे मेरे बचपन का एक किस्सा याद आ रहा है। मैं छोटा था, उस जमाने में कॉंसवर्ड पझल्स" काफी प्रसिध्द थे। अगर शब्द पहेली ठीकसे सुलझाकर

एक रुपये के पोस्टल ऑर्डर के साथ भेजी गयी, और वह बराबर, निकली तो दस हजार रुपये की मोटर इनाम में मिलती थी। हम देशभक्त के लड़के। कैक्टस की तरह जीते थे। इसलिए मुझे लगा कि यह पहेली सुलझाकर भेजनी चाहिए। मैंने उस शब्द पहेली को अपनी अक्ल के मुताबिक सुलझाया और उसे दादा के पास ले गया। दादा ने वह पहेली देखी और मुझसे पूछा कि मैं इस फंदे में क्यों पड रहा हूं ? मैंने अपने मन की बात जब उनसे कही तो उन्होंने मुझसे एक ही वाक्य में ऐसी बात कही, जो मेरे दिलपर आज भी अंकित है। दादा ने मुझसे कहा, " सोचना हो तो अभी सोचना चाहिए। अगर इस उम्र से एक रुपये के ऐवज में दस हजार रुपये की मोटर मिलने की आकांक्षा होगी, तो तुम जिंदगी में अपने काम के उचित मुआवजे से कभी प्रसन्न नहीं रहोगे। एक बार हराम की कमाई की आदत लग गई, तो राम की कमाई से दिल नहीं भरता। " उस दिन के बाद आज तक सरकारी स्तरपर लॉटरी की योजना बनी तो भी मैंने लॉटरी का टिकट कभी नहीं खरीदा। इसके बिलकुल विपरीत मेरा दूसरा अनुभव है। मेरा छोटा लडका प्राथमिक स्कूल में पढ़ता था। शायद सात सालकी उम्र होगी। उसके लिए स्कूल का ड्रेस खरीदने उसे लेकर बाजार गया। दुकानदार ने ड्रेसके साथ लाटरी का एक टिकट भी इनाम में दिया। मैं जब उस मुफ्त के टिकट से इनकार करने लगा तब मेरे लड़के ने मुझसे कहा, "बाबा, टिकट ले लो" मैंने यूंही उससे पूछा कि 'यह टिकट लेने से क्या होगा ?" उसने जवाब दिया कि यदि नंबर लगा, तो दो लाख रुपये मिल जायेंगे। मालामाल हो जायेंगे " सात साल की उम्र में मुफ्त में मिले हुए टिकट के ऐवज में दो लाख रुपये की अभिलाषा रखनेवाला लड़का अपनी जिंदगी में कभी ईमानदारी से नौकरी कर सकेगा ? इसका विचार आज के माँ बाप और पालक करते ही नहीं। आजके मजदूर आंदोलन का यक्षप्रश्न तनखाह की बढोतरी का नहीं, श्रमिक के श्रमकी प्रतिष्ठा का है। वह समाजवादी लोकतांत्रिक समाज में प्रतिष्ठित नागरिक की तरह जीना चाहता है। मुझे याद है, नागपुर के पास एरोड्रम के नजदीक श्रमदान से एक सड़क बनाने की एक योजना थी। मिनिस्टर, कमिश्नर, विधायक और हम जैसे प्रतिष्ठित लोग उसमें शरीक हुए। नागपुर की मॉडेल मिल में काम करनेवाला उत्तर प्रदेश का मजदूर मेरे पास आया, और कहने लगा 'साहब. बडा अच्छा हुआ। आप जैसे बडे-बडे लोग 'शरमदान' करने आये। यह संस्कृत शब्द उसने अपनी जबान में उच्चारित किया। 'श्रम' को उसने 'शरम' में बदल दिया। चरखा परिश्रम न करते हुए जीनेवालों के लिए प्रायश्चित का प्रतीक है। प्रायश्चित की ही भावनासे हाथ में झाडू लेकर धार्मिक और सामाजिक असंतुलन के खिलाफ लड़ने के लिए और चरखा चलाने के विधायक

कार्यक्रम से शरीरश्रम की प्रतिष्ठा को बढ़ाने के लिए गांधीजी ने अपना जीवन व्यतीत किया। उनके रामराज्य की ये दो बातें प्राणदायिनी विशेषताएँ थीं। यह असंतुलन खत्म कर सामान्य इन्सान का मूल्य गांधीजी स्थापित करना चाहते थे जो लोकतंत्रके लिए आवश्यक है। आखिरकर लोकतंत्र में " Man is the measure of everything " इसीलिये झाडू और चरखा यह क्रांति के प्रतीक बने।

सामुदायिक प्रार्थना पारस्परिक सद्भावना का प्रतीक है। हम अपने खानगी जीवन में भगवान की पूजा अपने भले के लिए, अपने परिवार के भले के लिए करते हैं। कई बार हमारे दुश्मन का बुरा हो, ऐसी प्रार्थना भी भगवान से करते हैं। लेकिन महात्मा गांधी की सामुदायिक प्रार्थना के पीछे की भावना यह थी कि प्रार्थना में शरीक होनेवाले एक दूसरे की भलाई के लिए प्रार्थना करें। महाराष्ट्र का नागरिक कर्नाटक के नागरिक का भला चाहे, मुसलमान हिंदू का भला चाहे, और सारे एक ही राष्ट्र के नागरिक बनकर मिल-जुल कर रहें, यह उसके पीछे की भावना थी। यही राष्ट्रीयता थी, और भारतीयता थी। इन सभी भावनाओं का विकास नागरिक जीवन में करना लोकतंत्र के लिए अनिवार्य है।

अन्याय का प्रतिकार लोकतंत्र के लिए निहायत जरूरी है। इस भावना के सिवा कानून का राज भी मुकम्मिल नहीं हो सकता। जो बात बच्चा भी कर सकता है, वह सबसे आसान है, ऐसा हम मानते हैं। छोटा लडका स्वाभाविक रूप से सच ही बोलना चाहता है। कुसंस्कारों से वह झूठ बोलना सीखता है। सत्य वचन स्वभाव है। झूठ बोलना संस्कार है। अन्याय के खिलाफ आवाज उठाना मानव का स्वभाव है, अन्याय सहने की आदत होना कुसंस्कार है। आज हम सत्य-असत्य, न्याय-अन्याय का भी सौदा और समझौता कर जीना चाहते हैं। लडका अन्याय के खिलाफ आवाज उठाता है, या कुछ बोलता है। तो उसे हम चुप रहने के लिए कहते हैं। घर में चुप रहो, स्कूल में चुप रहो, समाज में चुप रहो, अन्याय के खिलाफ मत बोलो, मत लडो ऐसी यह 'चुप्पी' की संस्कृति है। हमे यह तय कर लेना होगा कि जमदग्नि की आज्ञा मानकर माता रेणुका की गर्दन छाँट देनेवाला परशुराम हमें चाहिए या बाप के अन्याय के विरुद्ध लडनेवाला हिरण्यकश्यपु का पुत्र प्रल्हाद हमें चाहिए। स्वतंत्रता के संदर्भ में अन्याय के खिलाफ लडनेवाला नागरिक अपने आप में एक विभूति है। एक पूर्णांक है। वह समाज का या समिष्टका एक अंश नहीं हैं, अपने आपमें समूचा नागरिक है। ऐसा नागरिक ही हमारे लोकतंत्र का अधिष्ठान है। सिर्फ साध्य अच्छा होने से नहीं चलता, साधन भी शुद्ध होना चाहिए। साधन शुद्धि नागरिक की

जीवन साधना होनी चाहिए। निर्भयता से जीनेवाला नागरिक ही लोकतंत्र की आशा है। क्योंकि "Fear is a darkroom where all negatives are developed"

स्वामी रामानन्द तीर्थ द्वारा दिये गये एक उदाहरण से इस भाषण को को समाप्त करूंगा। यूं तो यह विषय इतना लम्बा है कि वह सारा का सारा दो भाषणों में मैं आपके सामने नहीं रख सकूंगा। यह विषय चिंतन का है, कोरे भाषण का नहीं। नागरिक का विधायक एवं रचनात्मक सहयोग इस चिंतन की बुनियाद है। स्वामीजी जेल में थे, उस समय एक कैदी छोटी हथौडी से दीवार ठोक रहा था। स्वामिजी ने उससे पूछा "भाई, दीवार क्यों ठोक रहे हो? इस हथौडी से थोडे ही वह टूटेगी?" कैदी ने जबाब दिया, 'मेरी अंतरात्मा की आवाज कहती है, कि मेरी मुक्ति का रास्ता हाथ में जो साधन होगा उसीके आधारपर ढूंढो। इसलिए मैं हथौडी से यह गुलामी की दीवार तोड रहा हूँ' दूसरे दिन भी वह वैसे ही करने लगा। स्वामीजी ने उसे समझाया कि यह दीवार इस हथौडी से नहीं टूट सकती, और टूटी भी, तो इसके बाद इससे मजबूत दूसरी दीवार है। तुम मूर्खता क्यों कर रहे हो? कैदी ने वही जबाब दोहराया। यह कहानी कहते कहते स्वामीजी रुके। तब मुझ जैसे श्रोता ने उनसे पूछा 'कि फिर क्या हुआ?' स्वामीजी ने कहा कि यह सवाल पूछनेवाला नास्तिक होना चाहिए। इस कहानी का अन्त दो तरह से हो सकता है। एक तो यह हो सकता है कि कैदी दीवार ठोकता गया, दीवार टूट गयी और वह मुक्त हो गया। या यह भी हो सकता है कि कैदी दीवार ठोकता ही गया, और उसके छेद तक नहीं पड़ा, उल्टा ठोकते ठोकते कैदी ही मर गया। स्वामीजी की दृष्टि से ये दोनों अन्त सुखांत थे। कैदी मुक्त होता है या नही, इसका इसमें कोई महत्व नहीं, महत्व उसकी प्रेरणा का है, जो अपने हाथ में आये साधन के भरोसे आजाद और स्वतंत्र होने की उम्मीद रखता है, और जी जान से कोशिश करता है। लोकतंत्र में सामान्य नागरिक का भी यही कर्तव्य है।

मराठवाडा सन्तों की भूमि है। हमारे हिंदू धर्म में ऐसा माना जाता है कि कार्तिकी या आषाढी एकादशी के रोज जो खुद पंढरपुर की यात्रा में शरीक होकर पांडुरंग के दर्शन नहीं कर सकता, वह अगर यात्रा में जानेवाले यात्री या वारकरी को प्रणाम करे, तो वह नमस्कार भगवान तक पहुँच जाता है। मेरी अपनी यह भावना है कि इस संतों की भूमि में रहनेवाले आप जैसे नागरिक लोकतंत्र की जत्रा के भी वारकरी या यात्री हैं। और अगर मैं आपको प्रणाम करूँगा, तो वह मेरे इप्सित भगवान तक पहुँच जाएगा। इसी नम्र भावना से आप सब को प्रणाम करता हूँ। और आप सब के आभार मानता हूँ।

—०००—

प्रकाशक :- कुलसचिव, मराठवाडा विद्यापीठ, औरंगाबाद-४३१००४

मुद्रक :- विद्यापीठ मुद्रणालय, औरंगाबाद-४३१००४

मूल्य :- दस रुपये मात्र